Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. XI, Issue No. XXI, April-2016, ISSN 2230-7540, ISSN 2230-7540

छायावादी रचनाकारों ने दोनों दायित्व निभाया रचनात्मक भी और आलोचनात्मक भी

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XI, Issue No. XXI, April-2016, ISSN 2230-7540

छायावादी रचनाकारों ने दोनों दायित्व निभाया रचनात्मक भी और आलोचनात्मक भी

Dr. Asha Tiwari Ojha*

Associate Professor, Department of Hindi, Sundaram Mahila College, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar

सार – ***हिंदी साहित्य के इतिहास में छायावाद द्विवेदीयुग के बाद की काव्य-धारा है जो अपने साथ काव्य-रचना की नवीन पद्धति और नूतन शैली के साथ साहित्य में प्रवेश करती है। इसके आधार स्तम्भ छायावादी चतुष्टय माने जाते हैं जो क्रमशः जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदनपंत और महादेवी वर्मा हैं। अगर हम इन चारों रचनाकारों के साहित्यिक-जीवन पर दृष्टिपात करें तो ये हमें आलोचक नहीं बल्कि विशुद्ध कवि नजर आते हैं। काव्य इनके रचना कर्म का प्रमुख पक्ष है आलोचना गौड़ पक्ष।***

----------X----------

दरअसल इन छायावादी कवियों की दृष्टि कविता की नवीन मौलिक उद्भावनाओं में ही रमी है, सिद्धांत निरूपण करना या आलोचनात्मक साहित्य सृजन इनका लक्ष्य नहीं रहा है। फिर भी, इन्होंने यत्र-तत्र अपने निबन्धों, पुस्तकों की भूमिकाओं एवं टिप्पणियों में आलोचनात्मक विचारों का निरूपण किया है। विशुद्ध कवियों के आलोचनात्मक विचारों के निष्पादन का कारण छायावाद के आलोचक थे। दरअसल छायावादी काव्यधारा को प्रारंभ में विद्वतजनों की नाराजगी झेलनी पड़ीं जिसका कारण छायावाद का पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं से संवेदना और शिल्प के धरातल पर अत्यधिक अलग होना। जिसके कारण इस काव्य-धारा का बहुत विरोध हुआ। छायावाद के प्रति आलोचकों के मन में कई ऐसी भ्रांतियां थी जिसका निराकरण आवश्यक था। अतः छायावादी कवियों को अपनी सृष्टि और दृष्टि दोनों को स्पष्ट करना आवश्यक था। यद्यपि तद्युगीन पत्र-पत्रिकाओं ने छायावाद के समर्थन में लिखा फिर भी छायावादी रचनाकारों को परिस्थितियां प्रतिकूल ही मिल रही थी। न तो कोई प्रतिष्ठित आलोचक था जो इनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखता हो और न कोई नया आलोचक था जो इनकी रचनाओं की समग्र समीक्षा कर सके। ऐसी स्थिति में छायावादी रचनाकारों ने दोनों दायित्व निभाया रचनात्मक भी और आलोचनात्मक भी। आलोचनात्मक रूप में कुछ फुटकल निबन्ध लिखे तो कुछ काव्य संग्रहों की भूमिकाएँ। अपने काव्य-सृजन के प्रतिमान स्पष्ट करने के क्रम में इन्होंने हिन्दी आलोचना में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। मधुरेश ने लिखा है- "छायावादी कवियों के लिए आलोचना बहुत-कुछ एक आपद्धर्म की तरह थी। छायावाद के चैतरफा और व्यापक विरोध ने ही वस्तुतः उन्हें आलोचना-कर्म के लिए विवश किया।"[1] चूँकि छायावादी दृष्टि स्वछन्द एवं अपेक्षाकृत नवीन थी, इसलिए शुक्ल जी की विचारधारा से अलग एवं स्वछन्द रूप से विकसित हुयी। आधुनिक हिंदी-काव्य में अपनी पूर्ववर्ती मान्यताओं में क्रांति लाने वाला छायावाद अपने साथ नवीन जीवन-दर्शन, समीक्षा की नवीन पद्धति और मान्यताओं को लेकर उपस्थित हुआ। सभी छायावादी कवियों ने महत्वपूर्ण गद्य लिखा और अपनी परिवर्तित काव्य-संवेदना की व्याख्या की एवं स्पष्टीकरण किया। इस प्रकार इन्होंने कविता के साथ-साथ आलोचना को भी समृद्ध किया। कहानी की आलोचना के सन्दर्भ में देवी शंकर अवस्थी ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि हिंदी में कवियों द्वारा लिखित आलोचना की जैसी एक समृद्ध परंपरा रही है वैसी कहानी में नहीं रही।[2] उनका यह कथन पूर्णतया सत्य है। छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय भले ही कुछ लोग मुकुटधर पांडेय को देते रहे हो लेकिन इस काव्य आन्दोलन और कविता की बदली हुई संवेदना का जैसा सूक्ष्म और व्यवस्थित विवेचन उसके चारों प्रमुख कवियों जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा के विवेचनों में उपलब्ध है, वह इस काव्य प्रवृत्ति की समझ को तो विस्तार देती ही है, वह हिंदी आलोचना की भी एक महत्वपूर्ण उल्लेखनीय उपलब्धि है। अतः संक्षेप में इन चारों कवियों की आलोचनात्मक सक्रियता का उल्लेख आवश्यक है।

छायावादी चतुष्टय के अग्रणी कवि जयशंकर प्रसाद ने अपने कवि-कर्म की शुरुआत ब्रजभाषा से की लेकिन वे मूलतः छायावादी और रहस्यवादी कवि थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद और जयशंकर प्रसाद को बहुत सीमित समर्थन ही

www.ignited.in

दिया। वे काव्य में रहस्यवाद के प्रबल विरोधी थे और छायावाद की परिवर्तित काव्य-संवेदना, विशेष रूप से उसकी मांसल ऐन्द्रियता और सूक्ष्म सौंदर्य बोध वे स्वीकार नहीं कर सके। उनके काव्य संस्कार मूलतः द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक और नैतिक मूल्य-दृष्टि से निर्मित थे। प्रसाद जी मूलतः कवि थे। स्वाभाविक रूप से प्रसाद ने छायावाद और रहस्यवाद के समर्थन में कुछ निबन्ध लिखे जिनका पुस्तकाकार प्रकाशन प्रसाद जी के निधन के बाद सन् 1939 में, नंददुलारे वाजपेयी ने लम्बी भूमिका लिखकर किया। जयशंकर प्रसाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इस धारणा से सहमत नहीं थे कि छायावाद का स्रोत विदेशी है और ईसाई संतों का छायाभास बंगाल से होता हुआ हिंदी में आ पंहुचा है। शुक्ल जी छायावाद को शैली मात्र मानते थे और इसके अतिरिक्त उसका कोई सामजिक आधार वे स्वीकार नहीं करते थे। अपने निबन्ध 'काव्य और कला' में प्रसाद शुक्ल जी का उल्लेख किये बिना ही उनके आक्षेपों का उत्तर देते हुए लिखते हैं, "विज्ञ समालोचक भी हिंदी की आलोचना करते-करते 'छायावाद', 'रहस्यवाद' आदि वादों की कल्पना करके उन्हें विजातीय, विदेशी तो प्रमाणित करते ही हैं, यहाँ तक कहते हुए लोग सुने जाते हैं कि वर्तमान हिंदी कविता में अचेतनों में, जड़ों में चेतना का आरोप करना हिंदी वालों ने अंगरेजी से लिया है, क्यांेकि अधिकतर आलोचकों के गीत का टेक यही रहा है कि हिंदी में जो कुछ नवीन हो रहा है, वह सब वाह्य-वस्तु है।"[3]

प्रसाद जी रहस्यवाद का विवेचन भारतीय अद्वैतवाद की मानववादी धारा से जोड़कर करते हैं। वे भारतीय काव्य का मूलाधार आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति को मानते हैं। प्रसाद जी कहते हैं, "आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है।"[4]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल को काव्य सिद्धांत के रूप में रहस्यवाद की सत्ता स्वीकार नहीं थी। लेकिन प्रसाद जी के अनुसार, "काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।"[5] आचार्य रामचंद्र शुक्ल के छायावादी रहस्यवाद का विरोध किये जाने पर प्रसाद जी ने 'रहस्यवाद' नामक निबन्ध में इसका उत्तर दिया। उन्होंने लिखा, "भारतीय विचारधारा में रहस्यवाद को स्थान न देने का एक मुख्य कारण है। ऐसे आलोचकों के मन में एक तरह की झुँझलाहट है। रहस्यवाद के आनंद पथ को उनके कल्पित भारतीयोचित विवेक में सम्मिलित कर लेने से आदर्शवाद का ढ़ांचा ढीला पड़ जाता है।"[6]

प्रसाद जी ने छायावादी रहस्यवाद को भारत की निजी सम्पत्ति घोषित किया।[7] शुक्ल जी काव्य में सांप्रदायिक रहस्यवाद के विरोधी थे और उसे पश्चिम से आया हुआ मानते हैं जबकि प्रसाद उसे शुद्ध भारतीय घोषित करते हैं। यद्यपि स्वाभाविक रहस्यवाद से शुक्ल जी को परहेज नहीं है, वे साम्प्रायिक रहस्यवाद के विरोधी है।

जयशंकर प्रसाद कवि रूप में छायावादी थे तो उपन्यासकार के रूप में यथार्थवादी। यथार्थ की महत्ता उन्होंने ठीक-ठीक आँकी। यथार्थवाद और छायावाद के विषय में उन्होंने जो कुछ लिखा वह उनकी मर्मभेदिनी दृष्टि का परिचायक है। यथार्थवाद की प्रधान विशेषता उनकी दृष्टि में, "लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात है।"[8] यथार्थवादी साहित्य मात्र यथार्थ और नग्नता का चित्रण करना ही नहीं है अपितु उसमें समाज के सुख का भी ध्यान होना चाहिए, ऐसा प्रसाद जी मानते हैं। यथार्थ का मुख्य वाहन वे गद्य साहित्य को मानते हैं। हिंदी की परंपरा सामाजिकता और लोकमंगल की भावना की ओर बढ़ रही थी यह प्रसाद जी के यथार्थवाद संबंधी विचारों से पता चलता है।

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद पर भी विचार किया है और छायावाद को इस प्रकार परिभाषित किया है- "वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को छायावाद कहते हैं।"[9] प्रसाद जी मूलतः कवि थे इसीलिए अनेक विषयों पर उनके ये विचार विस्तृत और संपूर्ण नहीं है, एक कवि का पूर्वग्रह भी दिखाई पड़ता हैं लेकिन प्रसाद जी के इन निबन्धों से उनकी सुगम्भीर गवेषणात्मक प्रवृत्ति और विश्लेषणात्मक क्षमता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

जयशंकर प्रसाद की तरह सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने भी अपनी कविताओं के सम्बन्ध में वक्तव्य देकर अपनी आलोचना-दृष्टि विकसित की। उन्होंने अपने साथ अपने छायावाद से जुड़े अन्य समकालीन कवियों विशेषतया पन्त की कृतियों के विश्लेषण द्वारा छायावादी काव्य में घटित बदलाव को रेखांकित किया। उनके इस प्रयास को किसी हद तक पथ-केन्द्रित आलोचना की शुरुआत के रूप में भी देखा जा सकता है।

लेकिन निराला का गद्य अन्य छायावादी कवियों के गद्य से अलग है। छायावाद के अन्य कवि भावोच्छल गद्य लिखते हैं जबकि निराला का गद्य बुद्धिप्रवण और तर्कसंगत है। 'गद्य जीवन संग्राम की भाषा है', और 'कविता परिवेश की पुकार है' लिखने वाले निराला छायावादी कवियों में अपना अलग स्थान आलोचक की हैसियत से भी रखते हैं।"[10]

निराला ने 'रवीन्द्र कविता कानन' के अतिरिक्त कोई स्वतंत्र आलोचनात्मक ग्रन्थ नहीं लिखा है। उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ प्रायः स्फुट निबन्धों के रूप में ही प्रस्तुत की गई हैं। उन्होंने साहित्यिक निबन्धों के अतिरिक्त दार्शनिक, सामाजिक, संस्मरणात्मक तथा भावात्मक निबन्ध भी लिखा।

निराला ने अपने निबन्धों में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है उनके निबन्ध व्यावहारिक समीक्षा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। निराला ने काव्य पर किसी सिद्धांत के माध्यम से विचार नहीं किया है बल्कि कविता में सौन्दर्य विधायक प्रतिमानों पर बहस की है। भाषा प्रयोग में भी निराला कुशल रहे हैं। उनकी भाषा अलंकृत और कृत्रिम नहीं प्रतीत होती बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि शब्दों को फोड़-फोड़ कर उसका छिलका उतार-उतारकर उनका प्रयोग किया जा रहा है। 'साहित्य और भाषा' निबन्ध में निराला लिखते हैं- "वह (साहित्य) किसी उद्देश्य की पुष्टि के लिए नहीं आता,वह स्वयं सृष्टि है। इसीलिए उसका फैलाव इतना है, जो किसी सीमा में नहीं आता। ऐसे ही साहित्य से राष्ट्र का यथार्थ कल्याण हुआ है।"[11] निराला का यह मानना है कि इस संसार में कुछ भी उद्देश्यहीन नहीं है तो फिर कविता कैसे उद्देश्यहीन हो सकती है। ऐसा कहकर निराला कविता की स्वतंत्रता का समर्थन कर रहे होते हैं। किसी भी रचना को उसके रचनात्मक नियमों के अनुसार मूल्यांकित करने की बात जो आज की जा रही है, यह निराला ने बहुत पहले ही कह दिया था।

छायावाद पर आलोचकों ने भाषा की क्लिष्टता का आरोप लगाया। उनके अनुसार छायावादी कवितायें पाठकों के लिए सहज और बोधगम्य नहीं हैं। लेकिन निराला कविता की भाषा को सहज ही बोधगम्य बनाने के पक्ष में नहीं थे, उन्होंने कहा, "आप निकली हुई और गढ़ी हुई भाषा छिपती नहीं। भावानुसारिणी कुछ मुश्किल होने पर भी भाषा समझ में आ जाती है, उसके लिए कोष देखने की जरुरत नहीं। और लोगों को अपने में मिलाने का तरीका भाषा को आसान करना नहीं, न मधुर करना, बल्कि व्यापक भाव भरना और उसी के अनुसार चलना है।"[12] इस प्रकार निराला साहित्यिक भाषा के सबसे बड़े प्रचारक हैं। बिम्बधर्मिता साहित्यिक भाषा की मूल प्रवृत्ति है विशेषतः काव्य के सन्दर्भ में इसमें शब्दों को इस प्रकार चुनकर संयोजित किया जाता है कि वे विशेष बिम्बों की रचना करते है और उसके माध्यम से कथ्य को मूर्त कर देते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्यकार भाषा के सामान्य रूप में कुछ फेर-बदल भी कर देता है। इसीलिए अरस्तू ने काव्य की भाषा को सामान्य बोलचाल की भाषा का अतिक्रमण माना है। वनिता में शब्द-संयोजन शब्दों के स्थान-विशेष तथा विभिन्न शब्दों के परस्पर सम्बन्धों में ही कला का जन्म होता है। एक सफल रचना में उसमें प्रयुक्त हर शब्द, हर चिंतन एवं उद्देश्य और अभिप्राय होता है। निराला के विचारों में भाषा के इन्हीं गुणों का समर्थन है।

अपनी आलोचना में निराला कविता में अपनी गहरी पैठ का प्रमाण तो देते ही हैं, वे कविता के अंतरालों को बड़ी कुशलता से भरते है और कविता के दबे-ढकें कोनों को सूक्ष्मता से आलोकित करते हैं। इस दृष्टि से उनके लेख 'पन्त और पल्लव' का उल्लेख खासतौर से किया जाता है। आलोचक निराला का प्रखरतम रूप 'पन्त और पल्लव' निबन्ध में प्रकट हुआ है। "हिंदी खड़ी बोली के साहित्य में ऐसा संयोग दुर्लभ रहा है कि एक ही धारा के एक समर्थ कवि ने अपने समकालीन अन्य समर्थ कवि की ऐसी पैनी आलोचना की हो। यह ठीक है कि निराला ने पन्त के गुणों की अपेक्षा दोष ही अधिक दिखाए हैं किन्तु उन्होंने जिस मर्मभेदिनी दृष्टि से पन्त की रचनाओं की समीक्षा की है, वह कई नाम -धारी आलोचकों को भी नहीं मिली है।"[13] इस प्रत्यालोचना का कारण यह था कि पन्त जी ने अपने काव्य-संग्रह की भूमिका में निराला की कुछ पंक्तियों में छंद विषयक दोष ढूंढा था और स्वयं को मुक्त छंद का प्रवर्तक घोषित किया था।

निराला ने पन्त के आरोपों का जवाब तो दिया ही लेकिन पन्त काव्य के विश्लेषण में जिस मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया वह प्रशंसनीय है।

पंत जी ने निराला पर रवीन्द्रनाथ के अनुकरण करने का आरोप लगाया था, निराला ने अत्यंत चतुराई से वही आरोप पन्त जी पर लगा दिये। उन्होंने पंत जी पर भावानुवाद का आरोप लगाया और अनेक उद्धरणों से यह दिखाया कि पन्त जी ने रवीन्द्रनाथ, शैली, वर्ड्सवर्थ की नकल की है। अपने पंत और पल्लव विषयक लेख में निराला कहते है, "पंत जी चैर्य कला में निपुण हैं।"[14]

'पल्लव' की भूमिका में पंत जी ने कवित्त छंद को हिंदी का औरस नहीं पोष्य पुत्र माना था और मात्रिक छंद को हिंदी कविता की गति के अनुकूल माना था। प्रत्युत्तर में निराला ने कवित्त को भारतीय जनता की हृदय गति के अनुकूल सिद्ध किया। कवित्त छंद का समर्थन करते हुए निराला कहते हैं- "हिंदी के प्रचलित छंदों में जिस छंद को एक विशाल भूभाग के मनुष्य कई शताब्दियों तक गले का हार बनाये रहे, जिसमें उनके हर्ष-शोक, संयोग-वियोग और मैत्री-शत्रुता की समुदगत विपुल भाषा राशि आज साहित्य के रूप में विराजमान हो रही है, आज भी जिस छंद की आवृत्ति करके ग्रामीण सरल मनुष्य अपार आनंद का अनुभव करते हैं, जिसके समकक्ष कोई दूसरा छंद उन्हें जंचता ही नहीं, करोड़ों मनुष्यों के उस जातीय छंद को, उनके प्राणों की जीवनी शक्ति को परकीय कहना कितनी दूरदर्शिता का परिचायक है, पन्त जी स्वयं समझें।[15]

इतना ही नहीं निराला ने कवित्त का समर्थन करने के लिए अपने संगीत-ज्ञान को भी आधार बनाया। मात्राओं की तालिका देकर यह दिखाया कि थोडा सा हेर फेर करने से ही कवित्त चैपाल और ठुमरी के रूप में गाया जा सकता है।

www.ignited.in

मुक्त छंद के विषय में पन्त के आरोपों का जवाब देते समय निराला ने यह कहा कि, "उसका (मुक्त छंद) सौंदर्य गाने में नहीं वार्तालाप करने में है।"[16] छंदों के सम्बन्ध में निराला का इस प्रकार का सूक्ष्म अन्वेषण इस बात का प्रमाण है कि वे छायावाद के सर्वश्रेष्ठ कवि ही नहीं सर्वश्रेष्ठ आलोचक भी है। यह बात छंदों के सम्बन्ध में ही नहीं आज की कविता के सम्बन्ध में भी प्रासंगिक है। नयी कविता भाव, भाषा और छंद की दृष्टि से निराला के काव्य का विकास प्रतीत होती है। निराला कवित्त छंद का समर्थन करते हुए कहते है कि, "केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कवित्त छंद हिंदी का चूकि जातीय छंद है, इसीलिए जातीय मुक्त छंद की सृष्टि भी कवित्त-छंद की गति के अनुकूल हुई है।[17]

'पन्त और पल्लव' में निराला जी ने अपने व्यावहारिक समीक्षा का परिचय भी दिया है। व्यावहारिक समीक्षा में निराला पन्त जी की सिर्फ आलोचना ही नहीं करते बल्कि उनके गुणों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं और उनकी प्रशंसा भी करते हैं। निःसंदेह "समीक्षा के क्षेत्र में भी निराला प्राणवान एवं अकुंठ हैं।"[18]

निराला छायावाद के एक अलग विचारधारा के कवि और आलोचक थे। वे रीतिकाल का विरोध करते थे लेकिन महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल की तरह सौंदर्य व श्रृंगार के विरोधी नहीं थे। एन्द्रियता का वे निषेध नहीं करते थे। छायावाद और अपनी आलोचना से असंतुष्ट और खिन्न होकर भी वे आलोचना-कर्म से इंकार नहीं करते। आलोचना को वे 'साहित्य का मस्तिष्क' मानते हैं और साहित्य के विकास में उसकी भूमिका को स्वीकार करते हैं।

निराला अपने समय में लिखी जा रही आलोचना से संतुष्ट नहीं थे। उस समय की आलोचना से निराला को यह शिकायत थी कि वह काव्य की सूक्ष्मताओं को ठीक से नहीं समझ पा रही थी और ना ही काव्य की संवेदना को ग्रहण कर पा रही थी। उनका मानना था कि एक आलोचक को एक कवि से ज्यादा सामश्र्यवान होना चाहिए। इस तरह से वे एक तरह से आलोचक की विशेषताओं का भी आख्यान प्रस्तुत करते हैं। ऐसा न होने पर वे अपना रोष भी प्रकट करते थे। निराला भाव, दार्शनिकता, शब्द चयन, रस ध्वनि और अलंकार इन सबका कविता में महत्व स्वीकार करते थे, लेकिन इनके समायोजन में ही कविता देखते थे। निःसंदेह निराला की आलोचना भी पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं है क्योकि वे विशुद्ध आलोचक नहीं, कवि हैं लेकिन फिर भी उन्होंने एक आलोचक की हैसियत से जिस गहरी पैनी अंतर्दृष्टि और सूझ बूझ का परिचय दिया है, उससे वे छायावाद के सर्वश्रेष्ठ आलोचक कवि सिद्ध होते हैं। निराला की आलोचना का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य उनकी भाषा क्षमता है जिस पर टिप्पणी करते हुए रामविलास शर्मा कहते हैं- "निराला के लिए आलोचना और कविता की भाषा में मौलिक अंतर नहीं है। कविता जब कल्पना लोक छोड़कर जीवन संग्राम के निकट आएगी, तब वह कोमलकांत पदावली की भूमि छोड़कर गद्य की भाषा के निकट आयेगी। जब गद्य जीवन संग्राम की भूमि छोड़कर कल्पना लोक की ओर उड़ेगा, तब उसकी भाषा भी कोमलकांत पदावली के निकट होगी। यहाँ प्रश्न सरलता और क्लिष्टता का नहीं है, प्रश्न है जीवन संग्राम के अनुकूल या प्रतिकूल भाषा का। रीतिवादियों का आदर्श है प्रसाद-गुण-युक्त सरल भाषा। किन्तु यह निराला के लिए जीवन-संग्राम की भाषा नहीं है।"[19]

'साहित्य का फूल अपने ही वृत्त पर' विषयक अपने निबन्ध में निराला जी साहित्य में सामयिकता या समसामयिकता पर अपने विचार व्यक्त करते हैं। निराला नवीनता में ही सनातनता पाते हैं। निःसंदेह निराला के ये विचार आधुनिक समय में अति प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। अपने 'हिंदी कविता-साहित्य की प्रगति' विषयक निबन्ध में निराला हिंदी कवियों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं और हरिऔध के चैपदों की तारीफ करते हैं। खड़ी बोली को परिष्कृत रूप प्रदान करने के कारण गुप्त जी की प्रशंसा करते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि निराला ने एक कवि के साथ एक कुशल आलोचक की भूमिका भी निभाई है। मूलतः वे एक कवि थे, और स्वतंत्र आलोचनात्मक पुस्तक नहीं लिखीं फिर भी उन्होंने भाव, भाषा, छंद विषयक जो अवाधारणाएं व्यक्त की हैं, वे आज भी प्रशंसनीय हैं। निराला ने समालोचना के नाम पर काव्य-सिद्धांतों का प्रतिपादन नहीं किया है बल्कि कविता की व्यावहारिक समीक्षा की है। फिर भी कविता और कविता की आलोचना दोनों दृष्टियों से निराला आज छायावादी कवियों में सबसे अधिक संद्रभवान हैं।[20]

छायावादी कविता के महत्वपूर्ण स्तम्भ सुमित्रानंदन पन्त मूलतः कवि थे। पृथक से आलोचना-कर्म उन्होंने नहीं किया। अपने काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं और छिट-पुट निबन्धों के माध्यम से ही उन्होंने अपनी आलोचनात्मक दृष्टि विकसित की। छायावादी कवियों में काव्य की परिवर्तित संवेदना के उद्घाटन का कार्य सबसे अधिक पन्त जी ने किया। अपनी काव्य-यात्रा में अनेक बाह्य परिवर्तनों और सामयिक स्थितियों से वे प्रभावित हुए। इस प्रभाव का औचित्य सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपनी कृतियों की लम्बी भूमिकाएं लिखी। ऐसी ही विस्तृत भूमिका उन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य संग्रह पल्लव की लिखी है जिसका महत्व अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ के काव्य संग्रह 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका की तरह है। वर्ड्सवर्थ के काव्य संग्रह 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका को पश्चिम "स्वच्छन्दतावाद का घोषणा पत्र" कहा जाता है। वैसे ही सुमित्रानंदन पन्त के काव्य संग्रह पल्लव की भूमिका को

'छायावाद का घोषणा पत्र' कहा जाता है।'पल्लव' की अपनी विस्तृत भूमिका में पन्त जी ने काव्य संबंधी अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने मुख्यतः ब्रजभाषा और खड़ी बोली के शब्द सौकुमार्य पर विचार किया है। ब्रजभाषा प्रेमी खड़ी बोली को काव्य-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने के पक्ष में नहीं थे। उन्हें खड़ी बोली कर्कश और कर्णकटु लगती थी। 'पल्लव' की भूमिका में पन्त जी ने खड़ी बोली को काव्य रचना का उपयुक्त माध्यम माना है और खड़ी बोली को नवीन युग की स्वाभाविक भाषा घोषित किया है। खड़ी बोली को पन्त जी जागरण युग की भाषा मानते हैं। वे कहते हैं, "ब्रजभाषा में नींद की मिठास थी, इसमें (खड़ी बोली) में जागृति का स्पंदन,उसमें रात्रि की अकर्मण्य स्वप्नमय ज्योत्सना, इसमें दिवस का सशब्द कार्य-व्यग्र प्रकाश।"[21]

इस भूमिका में पन्त जी ने लगे हाथ मध्ययुगीन कवियों की संकीर्ण पर आघात किया है और छायावाद को आधुनिक युग की नए भावबोध, नयी भाषा, नए शिल्प से युक्त काव्यधारा सिद्ध किया है। काव्य को भी परिभाषित करने का प्रयास पन्त जी ने किया है, और कहा हैं कि "कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।"[22] कविता के लिए उपयुक्त छंद वे मात्रिक छंद को मानते हैं, कवित्त छंद को नहीं और ना ही बंगला के छंदों को काव्य रचना के उपयुक्त मानते हैं। पन्त जी रीतिकालीन साहित्य और उसकी शैलियों को खड़ी बोली के लिए इतना अनुपयुक्त मानते हैं कि सवैया और कवित्त छंद भी उन्हें हिंदी की कविता के लिए अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ते। कवित्त छंद को वे हिंदी का पोष्य-पुत्र मानते हैं।[23] निराला और पन्त के बीच अंतर्विरोध का कारण पन्त द्वारा कवित्त छंद का तिरस्कार भी है। जिसका प्रतिउत्तर निराला ने अपने 'पन्त और पल्लव' विषयक अपने निबन्ध में दिया।

पल्लव की 'प्रवेश' शीर्षक भूमिका में पन्त जी ने तुक, छंद और विशेष रूप से मुक्त छंद, व्याकरण आदि पर भी विचार व्यक्त किया है लेकिन उनके ये विचार आत्मनिष्ठ लगते हैं इसीलिए उन्हें विशुद्ध आलोचना मानना कठिन है। पन्त मूलतः कवि थे और उनके ये विचार किसी कवि के हृदय पर पड़ने वालों विचारों की अभिव्यक्ति लगते हैं, विचार-विवेचन कम। काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली की व्यापक स्वीकृति किये जाने वाले संघर्ष की दृष्टि से इस भूमिका का ऐतिहासिक महत्व है।

डॉ. नगेन्द्र पल्लव की इस भूमिका को युग-प्रवर्तक मानते हुए भी, भाषा विवाद में संतुलित पर्यालोचन से अधिक एक युवा कवि के उत्साह के रूप देखते हैं[24] लेकिन इस भूमिका के माध्यम से काव्य के प्रतिमानों को देखने की एक आलोचनात्मक दृष्टि का विकास अवश्य होता है। पन्त जी ने कविता के शिल्प के हर पहलू पर इस भूमिका में विचार किया। वे कविता में अलंकार, समास का आवश्यकता अनुसार प्रयोग करने पर बल देते हैं। भाषा में संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग ना करने का परामर्श देते हैं। खड़ी बोली की कविता में उन्हें यह दोष सर्वाधिक मात्र में व्याप्त दिखाई देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी एक कवि के साथ-साथ आलोचक का दायित्व भी निर्वहन करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी आलोचना का विकास: मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 130,
2. वही, पृ0 130
3. काव्य और कला तथा निबन्ध: जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पृ0 30
4. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध: जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पृ0 38
5. वही, पृ0 46
6. वही, पृ0 49
7. वही, पृ0 68
8. वही, पृ0 118
9. काव्य और कला तथा निबन्ध, पृ0 121
10. हिन्दी आलोचना-विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 90
11. प्रबंध पद्म: निराला, भारतीय (भाषा भवन) दिल्ली, पृ0 24
12. प्रबंध पद्म: निराला, भारतीय (भाषा भवन) दिल्ली, पृ0 27
13. हिन्दी आलोचना: विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 92
14. प्रबंध पद्म: निराला, भारतीय (भाषा भवन) दिल्ली, पृ0 72
15. वही, पृ0 91
16. वही, पृ0 96

www.ignited.in

17. वही, पृ0 101

18. हिन्दी आलोचना: विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 93

19. निराला की साहित्य साधना: डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 72, पृ0 137

20. हिन्दी आलोचना-विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 12वाँ संस्करण, 2016, पृ0 95

21. पल्लव: पन्त, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 9वाँ संस्करण, आवृत्ति-2011, पृ0 16

22. वही, पृ0 33

23. वही, पृ0 38

24. हिन्दी आलोचना का विकास: मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2015, पृ0 133

Corresponding Author

Dr. Asha Tiwari Ojha*

Associate Professor, Department of Hindi, Sundaram Mahila College, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar